© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 05 | May 2018

गुप्तकालीन कला में परिलक्षित पर्यावरणीय चेतना : एक ऐतिहासिक अध्ययन

[1] विजय कुमार पाल, [2] डॉ० एम० एस० गुंसाई

[1] शोधार्थी , एस. जी. आर. आर. (पी. जी.) कॉलेज देहरादून, उत्तराखंड , भारत |

[2] असिस्टेंट प्रोफेसर , एस. जी. आर. आर. (पी. जी.) कॉलेज देहरादून, उत्तराखंड , भारत |

सार : कला विकास यात्रा की भारतीय परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। ताम्रप्रस्तर युगीन सैन्धव सभ्यता से लेकर ऐतिहासिक संस्कृति के काल क्रम में इस देश की कला धारा अपने प्रवाहमान स्वरूप की साक्षी है। वैदिक कालीन साहित्य में प्राप्त कलात्मक विचारों का पुरातात्विक प्रमाण अभी अप्राप्य है, किन्तु उसी परंपरा में शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुग, सातवाहन, कुषाण, गुप्त आदि शासकों के काल में स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, मृण्मय, धातु, संगीत एवं अलंकरण, आभूषण कलाओं के बहुमुखी विकास में दृष्टिगत होता है, जो कि अत्यंत विस्तृत एवं विशाल है। गुप्तकाल बौद्धिक चेतना का महान युग था। भारतीय इतिहास में गुप्तकाल 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रतिष्ठित है। यह काल ईसवी चैथी शती के आरम्भ से छठी शती के अंत तक माना जाता है। लगभग तीन सौ वर्षों के इस दीर्घ-काल में भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य, संगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। जिसकी पुष्टि तद्युगीन साहित्यिक रचनाओं तथा कलाकृतियों से होती है। गुप्त युग में मंदिरों, स्तूपों, मठों, प्रतिमाओं आदि का निर्माण देश के विभिन्न क्षेत्रों में दृष्टिगत है। उल्लेखनीय है कि गुप्त-कलाकारों ने अपने कला में अध्यात्म के साथ-साथ लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर लोगों में सौन्दर्य और आनंद की वृद्धि की, साथ ही इस बात पर विशेष बल दिया कि कला-कृतियाँ चरित्र निर्माण में सहायक बनें।

मुख्य शब्द: गुप्त साम्राज्य, मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत, अभिनव एवं नृत्य कला

प्रस्तावना:-

प्राचीन भारत के मुख्य भू-भाग पर केन्द्रिय सत्ता की स्थापना कुशल योग्य एवं उत्साही गुप्त नरेशों के द्वारा हुई। समुद्र गुप्त (पराक्रमांक), चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य), कुमार गुप्त (महेन्द्रादित्य), तथा स्कन्दगुप्त (क्रमादित्य), सदृश मनस्वी गुप्त सम्राटों के अनवरत प्रयास द्वारा पल्लवित एवं संवर्द्धित राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना-क्रिया को 'गुप्त प्रशस्तियों में धरणीबंध' की संज्ञा प्रदान की गई है। गुप्त सम्राट यदि एक ओर अद्वितीय वीर एवं शस्त्रजीवी थे तो दूसरी ओर विद्याव्यसनी, प्रज्ञावान, प्रजावत्सल एवं कला अनुरागी भी थे। फलस्वरूप कलागत उपलब्धि विविध विधाओं में यथा मूर्तिशिल्प, वास्तुकला, चित्रकला संगीत के रूप में प्रस्फुटित हुई। मथुरा कला जो कुषाण काल में किशोरावस्था में थी, वह चमत्कृत रूप से गुप्तकाल में विकासमान हुई स्मिथ महोदय के अनुसार

"गुप्तकालीन कलात्मक अभिवृद्धि का कारण भारत का विदेशी तत्वों को अतिसूक्ष्मता के साथ भारतीय कला में पिरोकर और अन्य भारतीय तत्वों को सम्मिलित कर भारतीयकरण का रूप दिया गया है। कुषाण कालीन भारतीय कला में आत्मसात किये गये विदेशी तत्वों को सुरूचिपूर्ण ढंग से कलात्मक रूप में विविध सज्जाओं के साथ प्रदर्शित करना गुप्त शिल्पी की मौलिक प्रतिभा की देन रही है। "यथा देवत्व का आभास देने के लिए बुद्ध मूर्ति में प्रभामंडल का प्रदर्शन गंधार कला शैली की महत्वपूर्ण विशेषता है। जिसे गुप्त-युग में गोलाकार और अण्डाकार रूप में बेलबूटों की नक्काशियों के द्वारा अलंकृत कर आर्कषक रूप में प्रदर्शित करने की परम्परा प्राप्त होती है। गुप्तकला में परिष्कृति ओर इन्द्रियनिग्रह (संयम) का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकलाकारों ने मात्रा की अपेक्षा लावण्य पर अधिक बल दिया, वस्त्रों आभूषणों तथा अन्य सजावटी वस्तुओं के प्रयोग में गम्भीरता दिखाई पड़ती है। गुप्तकाल में अभिव्यक्ति की सरलता है। अध्यात्मिकता का उद्देश्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पुराणों ओर प्राचीन शिल्प ग्रंथो में वास्तु मूर्ति-प्रतिष्ठा तथा कर्मकाण्ड के इस पारस्परिक संबंध पर विशेष शास्त्रीय विचार एवं निर्देशों का परिपालन गुप्तकाल में संग्रहित मिलने लगता है। जिनमें मत्स्य पुराण, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, विश्व धर्म प्रकाश, वृहत्संहिता आदि उपलब्ध है। गुप्तकालीन देव मूर्तियों के विकास में एक स्वस्थ कलात्मक और सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत करने में राजाओं के साथ ही उनकी प्रजा का भी अभूतपूर्व अनुयोग दृष्टिगत होता है। गुप्तकालीन कलात्मक इतिहास की आधारशिला धार्मिक, सहिष्णुता पर आधारित थी जिनकी पुष्टि अभिलेखों मुद्राओं प्रतिमाओं, मंदिरों, साहित्यिक प्रमाणों से प्राप्त होती है।

कलात्मक भव्यता और रूपोन्यन के लक्ष्य में कृतप्रयत्न गुप्तकलाकार ने स्वयं को अलंकारिता के मोह से प्रायः मुक्त ही रखा है। उसकी रचना अभिव्यक्ति में मंडन की न्यूनता और आकार की सादगी के मूलमंत्र सर्वत्र प्रभारी दिखाई देते हैं। कुषाणयुगीन मथुरा एवं गांधार की अपानगोष्ठियाँ जैसे - उत्प्रेरक तत्व के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अमर्यादित एवं असमाजिक प्रतीत होते हैं।

मथुरा-मूर्ति की कोमलता और अमरावती शिल्व के सौन्दर्य का अभिनव सम्मिलन गुप्तकालीन मूर्तियों में साकार हुआ। नितान्त आवश्यक गिने चुने आभूषणों और प्रायः अर्ध पारदर्शी वस्त्रों से युक्त शरीर के निजी सौन्दर्य के उद्घाटन की ओर गुप्त कलाकार समग्र ध्यान केन्द्रित करने में सफल हो सका।

गुप्तयुगीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति को प्रधानता प्रदान करना है। इस काल में पौराणिक देवताओं, विशेषकर शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी, गंगा-जमुना आदि का अंकर प्रमुखता से प्राप्त होता है। वस्तुतः इन मूर्तियों के माध्यम से धार्मिक साधना को सरलीकृत रूप देना गुप्त शिल्पकारों का अभिष्ट था। फलतः इस काल की देव-मूर्तियों में आध्यात्मिक क्रान्ति और आन्तरिक शान्ति की छटा व्याप्त है। सारनाथ और सुल्तान गंज से प्राप्त हुई बुद्ध मूर्तियों में जो मानसिक सन्तुलन और आध्यात्मिक सन्तुष्टि दिखाई पड़ती है। वह शिल्पकार के दृष्टिकोण की आध्यात्मिक एवं समर्पण भावना को प्रदर्शित करती है। गुप्तयुगीन मूर्तिकला में भारतीय प्रतिमाशास्त्र का अनुगमन दृष्टिगोचर होता है क्योंकि इस काल में प्रतिमाशास्त्र का विकास हो चुका था।

वृहत्संहिता में देवताओं की प्रतिमा शास्त्रीय विशेषतायें प्राप्त होती है, गुप्त युगीन कला में उन शास्त्रीय नियमों का परिपालन दृष्टिगत होता है। जैसा कि शैवागमों, वैष्णवागमों, मंत्रों तथा पुराणों में प्रतिमाशास्त्रीय आधार गुप्त मूर्तिकला ने ही प्रदान किया। शारीरिक सौन्दर्य की सृष्टि के लिए विषयानुकूल आसन तथा मुद्राओं का प्रयोग किया गया। मूर्तियों में समभंग, त्रिभंग, वज्रपर्यक अथवा पदमासन, अर्द्धपर्यक अथवा ललितासन, सुखासन आदि मुख्य आसनों से वैविहय उत्पन्न किया गया। इसी प्रकार हस्त मुद्राओं से भी शारीरिक सौन्दर्य का सृजन तथा विभिन्न भावों का अंकन संभव हुआ था। मुख्यतः अभय मुद्रा, वरदमुद्रा ध्यान, भूमिस्पर्श 'बुद्ध के लिए', सिंह कर्ण, कटयव लम्बित, व्याख्यान या धर्मचक्र प्रवर्तन इत्यादि मुद्राओं में मूर्तियों का निर्माण नियमानुसार किया गया।

गुप्त कलाकारों ने बिना समझें अनजाने में ही किसी मूर्ति का निर्माण नहीं किया अपितु उसे एक निश्चित ताल-मान में निर्मित किया जिससे उसका संतुलन बना रहे। इस माप का उपयोग तालमान के लिए किया गया। हथेली एवं अंगुल के एक निश्चित माप में मूर्तियों को नाप कर बनाने के लिए कलाकारों के द्वारा निश्चित किये माप को 'ताल मान' कहते हैं। गुप्त युग के पूर्व मानवाकृतियाँ वानस्पतिक जगत से आविर्भूत प्रदर्शित की जाती थी, किन्तु गुप्त कलाकारों की मानवाकृतियाँ केन्द्र बनीं तथा अन्य उपकरण उसके शोभावर्द्धन के लिए होते थे। वैदिक शक्तियों को मानवीकृत करने के लिए उन्हें अर्ध मानव के रूप में प्रदर्शित किया गया तथा कुछ मानवेर रूपों एवं गुणों से संयुक्त किया गया किन्तु इसमें भी केन्द्र मानव रूप ही है। भारत में मृण्मय मूर्तियों के निर्माण की परम्परा सिंधुघाटी की सभ्यता से चली आ रही है। मौर्य और शुंग काल में मृण्मय मूर्तियाँ बनती रही हैं किन्तु उनकी बनावट बहुत कलात्मक नहीं थी। मौर्य और शुंग काल में मृण्मय कला का माध्यम सामान्य स्तर का है किन्तु इस काल में इसे जो गौरवूपर्ण स्थान प्राप्त हुआ वह गुप्त शिल्पियों की अद्भुत कल्पनाशीलता और क्षमता का परिचायक है। साँचे का व्यापक रूप से प्रयोग करते हुए विभिन्न धरातलों पर इस माध्यम का जैसा विकास इस युग में हुआ वह विलक्षण है। विशाल स्तर पर ढ़ले फलक, पटट, इष्टिका और स्तम्भों के द्वारा समूचे धार्मिक वास्तु की रचना अब मानों सांस्कृतिक जीवन की आवश्यकता मान ली गई।

गुप्तकालीन विशेषताओं के अवलोकन से यह विदित होता है कि गुप्तकाल में मूर्ति रचना हेतु पाषाण, धातु एवं मिट्टी का प्रयोग किया गया। गुप्तकाल में अनेक ऐसी मूर्तियों की रचना की गई, जिनके उल्लेख के आभाव में गुप्त मूर्तिकला का विवरण ही अपूर्ण होगा। मथुरा, सारनाथ, एरण, देवगढ़, उदयगिरि, मनकुँवर, सुल्तान गंज की बौद्ध मूर्तियाँ तथा राजगृह, बेसनगर, देवगढ़ चन्देरी की जैन मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। गुप्तकालीन मूर्तिकला को अध्ययन की सुविधा हेतु अधोलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। गुप्तकालीन कला और स्थापत्य गुप्त काल में कला की विविध विधाओं जैसे वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला, मृदभांड, कला आदि में अभूतपूर्ण प्रगति देखने को मिलती है।

गुप्तकालीन स्थापत्य कला के सर्वोच्च उदाहरण तत्कालीन मंदिर थे। मंदिर निर्माण कला का

जन्म यहीं से हुआ। गुप्तकालीन मंदिर छोटी-छोटी ईटों एवं पत्थरों से बनाये जाते थे। 'भीतरगांव का मंदिर' ईटों से ही निर्मित है।

मूर्तिकला

इनकी अधिकांश मूर्तियाँ हिन्दू देवी-देवताओं से संबधित है। शिव के 'अर्धनारीश्वर' रूप की रचना भी इसी समय की गयी।

- विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति देवगढ़ के दशावतार मंदिर में स्थापित है।
- सारनाथ की बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति,
- मथुरा में खड़े हुए बुद्ध की मूर्ति
- सुल्तानगंज की कांसे की बुद्ध मूर्ति

वास्तुकला

- वास्तुकला में गुप्त काल पिछड़ा था।
- वास्तुकला के नाम पर ईंट के कुछ मंदिर मिले हैं जिनमें कानपुर के भितरगांव का, गाज़ीपुर के भीतरी और झांसी के ईंट के मन्दिर उल्लेखनीय है।

चित्रकला

- गुप्त काल में चित्रकला उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थी।
- गुप्तकालीन चित्रों के उत्तम उदाहरण हमें महाराष्ट्र प्रांत के औरंगाबाद में स्थित अजन्ता की गुफ़ाओं तथा ग्वालियर के समीप स्थित बाघ की गुफ़ाओं से प्राप्त होते हैं।

अजन्ता

- अजन्ता में निर्मित कुल 29 गुफाओं में वर्तमान में केवल 6 ही (गुफा संख्या 1, 2, 9, 10, 17) शेष है। इन 6 गुफाओं में गुफा संख्या 16 एवं 17 ही गुप्तकालीन हैं।
- इन गुफाओं में अनेक प्रकार के फूल-पत्तियों, वृक्षों एवं पशु आकृति से सजावट का काम, जातक ग्रंथों से ली गई कहानियों का वर्णनात्मक दृश्य के रूप में प्रयोग हुआ है।
- अजन्ता की चित्रकला की एक विशेषता यह है कि इन चित्रों में दृश्यों को अलग अलग विन्यास में नहीं विभाजित किया गया है।
- गुफा संख्या 17 के चित्र को 'चित्रशाला' कहा गया है। इस चित्रशाला में बुद्ध के जन्म, जीवन, महाभिनिष्क्रमण एवं महापरिनिर्वाण की घटनाओं से संबधित चित्र उकेरे गए हैं।
- गुफा संख्या 17 में उत्कीर्ण सभी चित्रों में माता और शिशु नाम का चित्र सर्वोत्कृष्ट है।
- अजन्ता की गुफाऐं बौद्ध धर्म की 'महायान शाखा से संबधित थी

बाघ की चित्रकला

- ग्वालियर के समीप बाघ नामक स्थान पर स्थित विंध्यपर्वत को काटकर बाघ की गुफाएं बनाई गई । 1818 ई. में डेजरफील्ड ने इन गुफ़ाओं को खोजा जहां से 9 गुफ़ाएं मिली है।
- बाघ गुफ़ा के चित्रों का विषय मनुष्य के लौकिक जीवन से सम्बन्धित है।
- बाघ की गुफ़ाएं मध्य प्रदेश में इन्दौर के पास धार में स्थित हैं। बाघ की गुफ़ाएं प्राचीन भारत के स्वर्णिम युग की अद्वितीय देन हैं।
- बाघ की गुफ़ाएं इंदौर से उत्तर-पश्चिम में लगभग 90 मील की दूरी पर, बाधिनी नामक छोटी सी नदी के बायें

तट पर और विन्ध्य पर्वत के दक्षिण ढलान पर स्थित हैं।

उपसंहार

गुप्तकाल बौद्धिक चेतना का महान युग था। भारतीय इतिहास में गुप्तकाल 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रतिष्ठित है। यह काल ईसवी चैथी शती के आरम्भ से छठी शती के अंत तक माना जाता है। लगभग तीन सौ वर्षों के इस दीर्घ-काल में भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य, संगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। जिसकी पुष्टि तद्युगीन साहित्यिक रचनाओं तथा कलाकृतियों से होती है। गुप्तयुग में मंदिरों, स्तूपों, मठों, प्रतिमाओं आदि का निर्माण देश के विभिन्न क्षेत्रों में दृष्टिगत है। तालमान एवं प्रतिमा लक्षण के ग्रंथ, शिल्पियों के आदर्श बनें, जिससे कला रूढ़िगत एवं सीमाबद्ध तो अवश्य हुई, किन्तु उनसे बौद्धिक अनुशासन एवं शास्त्रीय ज्ञान की भी वृद्धि हुई। वेशभूषा, शारीरिक रचना, दृश्य, आभूषण एवं शास्त्रीय ज्ञान मर्यादित, आदर्शरूप, सर्वग्राह्य, सर्वेदेशीय तथा सर्वप्रिय निर्मित हुए। धार्मिक मूर्तियाँ शास्त्रीय नियमों द्वारा नियंत्रित थी, किन्तु अलंकरण में स्वतंत्रता स्पष्ट दिखाई देते है। गुप्तशासकों के द्वारा शासित क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत थे शासकों के कला में रूचि के कारण गुप्तकालीन कलाकारों ने उत्कृष्ट हस्त-लाघवता का परिचय दिया, गुप्तकाल के सम्यक अनुशीलनोपरान्त सम्पूर्ण भारतीय कला के स्वर्णयुग को चरितार्थ करती हुई गुप्तयुगीन कला गौरवान्वित करती है। उल्लेखनीय है कि गुप्त्युगीन कलाकारों ने अपने कला में अध्यात्म के साथ-साथ लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर लोगों में सौन्दर्य और आनंद की वृद्धि की, साथ ही इस बात पर विशेष बल दिया कि कला-कृतियाँ चरित्र निर्माण में सहायक बनें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] पाण्डेय, वी.के. प्राचीन भारतीय कला, वास्तु एवं पुरातत्व, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013, पृ.-182

[2] पाण्डेय, वी.के. प्राचीन भारतीय कला, वास्तु एवं पुरातत्व, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013, पृ.-182

[3] अग्रवाल, पृथ्वी, गुप्तकालीन कला एवं वातु, विश्वविद्यलय प्रकाशन, वाराणसी 1994, पृ.- 71

[4] अग्रवाल, पृथ्वी, गुप्तकालीन कला एवं वातु, विश्वविद्यलय प्रकाशन, वाराणसी 1994, पृ.- 71

[5] प्राचीन भरतीय कला वास्तु कला एवं मूर्ति कला, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.-79

[6] प्राचीन भरतीय कला वास्तु कला एवं मूर्ति कला, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.-79/80

[7] श्रीवास्तव,ए.एल. भारतीय कला, किताब महल, इलाहाबाद, 1988, पृ.- 110

[8] अग्रवाल, पृथ्वी, गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1994, पृ.- 70

[9] अग्रवाल, पृथ्वी, गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1994, पृ.- 70

[10] यादव, रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 2000, पृ.- 80

[11] गुप्त, परमेश्वरी, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ.- 619

[12] अग्रवाल, पृथ्वी, गुप्त कालीन कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ. - 72